वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 66
ISBN 978-93-82071-11-2

धरती के देवता

–: *लेखिका* : –

गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

शरदपूर्णिमा महोत्सव, 11 अक्टूबर 2011 को जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा घोषित ''प्रथम पट्टाचार्य श्री वीरसागर वर्ष'' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.-250404,
फोन नं.- (01233) 280184, 280994
Website : www.jambudweep.org E-mail : jambudweeptirth@gmail.com

द्वितीय संस्करण	वीर नि. सं. 2538, वैशाख शु. 3	मूल्य
1100 प्रतियाँ	24 अप्रैल 2012, अक्षय तृतीया	12/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

–: *संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत* :–
गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी
–: *मार्गदर्शन* :–
प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी
–: *निर्देशन एवं सम्पादक* :–
स्वस्तिश्री कर्मयोगी पीठाधीश रवीन्द्रकीर्ति स्वामी जी
–: *प्रबंध सम्पादक* :–
जीवन प्रकाश जैन

———सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन———

प्रथम संस्करण-सन् 1982, प्रतिया-2200 प्रतियाँ प्रकाशित

कम्पोजिंग–ज्ञानमती नेटवर्क, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

प्रस्तावना

-डॉ. अनुपम जैन, इंदौर

'वत्थु सहावो धम्मो' अर्थात् वस्तु का स्वभाव ही धर्म है के रूप में धर्म को अत्यंत सरल एवं सहज रूप में परिभाषित करने वाले परम वैज्ञानिक जैन धर्म के सभी सिद्धांत शाश्वत एवं तर्क तथा विवेक की कसौटी पर खरे उतरते हैं मात्र सिद्धांत ही नहीं अपितु श्रावकों एवं आत्मविकास हेतु तत्पर अपने साधुओं हेतु प्रतिपादित आचार-विचार के नियम भी सर्वांगीण रूप में उपयोगी हैं।

जैन धर्म के सर्वप्रमुख सिद्धांत अहिंसा की विवेचना में आचार्य ने इसे संकल्पी आरम्भी, उद्योगी एवं विरोधी हिंसा के त्याग के रूप में इस प्रकार परिभाषित किया है कि वह प्रत्येक स्तर के व्यक्ति के लिए व्यवहार्य बन गयी है। कतिपय दशकों पूर्व तक पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति कायिक स्थावर जीवों की हिंसा की जैन शास्त्रों की बात अत्यंत दुरुह एवं काल्पनिक लगती थी किन्तु इस दुरूहता को न समझ पाने के कारण उपेक्षा करने अर्थात् जिनवाणी में प्रतिपादित विषय के विवेचन में असमर्थ वर्तमान जीवों द्वारा उसकी अवज्ञा के कारण प्रदूषण की विकराल समस्या सम्पूर्ण मानवता के अस्तित्व के लिए चुनौती बन गयी है।

भगवान महावीर की शिष्य प्रशिष्यात्मक परम्परा के सूक्ष्म दृष्टि सम्पन्न आचार्यों ने आत्म विकास एवं मोक्ष प्राप्ति हेतु दिगम्बर वेश धारण करना अपरिहार्य रूप में आवश्यक बताया एवं स्वयं के जीवन में उसको चरितार्थ किया। इस अनादि निधन परम्परा में आज भी जैन साधु दिगम्बरत्व को पोषण करते हुए पंचमहाव्रतों सहित २८ मूलगुणों (विशिष्ट नियम) को धारण करते हैं। दिगम्बर साधुओं की कठोर तपश्चर्या एवं दुरूह दिनचर्या से अनभिज्ञ तथाकथित बुद्धिजीवी वर्तमानकाल में दिगम्बर वेश को अनुपयुक्त एवं निरर्थक मानते हैं।

वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ ये तथाकथित चिन्तक शायद दिगम्बर साधु के

कठोर जीवन से अपरिचित होने के कारण सामान्य नग्न व्यक्ति एवं दिगम्बर जैन साधु में भेद नहीं कर पाते। मात्र इतना ही नहीं शायद वे दिगम्बरत्व के सामान्य गुणों को ही नहीं समझते।

जैन धर्म की इसी मूल दिगम्बर परम्परा में दीक्षित अपने जीवन में पंच-महाव्रतों को पालन करने वाली गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने प्रस्तुत कृति में दिगम्बर जैन साधु के २८ मूलगुणों को विस्तारपूर्वक चर्चा करने के बाद कौपीन मात्र का त्याग करने में होने वाले लाभों का अत्यंत सरल भाषा में प्रश्नोत्तर शैली में विवेचन किया है। मुनियों द्वारा अपरिहार्य रूप में आवश्यक सदैव रखे जाने वाले उपकरणों पिच्छी कमण्डलु की उपयोगिता एवं अपरिहार्यता स्थिर करते हुए आपने वैदिक, इस्लाम, ईसाई, बौद्ध आदि अन्यान्य धर्मों में आये दिगम्बरत्व की विशिष्टता एवं महानता विषयक उल्लेखों को संकलित कर इस लघु पुस्तक के महत्त्व को द्विगुणित कर दिया है।

प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध ऋद्धि सिद्धिधारी मुनियों की वर्तमान मुनियों में तुलना करके हमारे कतिपय सजातीय बन्धु वर्तमान मुनियों की उपेक्षा करने लगते हैं। उनका पुस्तिका में उपलब्ध जिनकल्पी एवं स्थविर कल्पी शीर्षक मुनियों के भेद में सम्यक् मार्गदर्शन मिलेगा एवं वे अपनी आस्था एवं विश्वास पुनः दृढ़ कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

स्वशरीर को भी पर एवं हेय मानकर, प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखने वाले, घोरतम कष्ट को भी उपसर्ग मानकर सहज भाव से सहने वाले सभी जीवों को सदैव कष्ट सहकर भी सन्मार्ग दिखाने हेतु सतत सचेष्ट इन धरती के देवताओं, दिगम्बर जैन साधुओं के चरणों में मेरा शतशत नमन।

तीन सौ पुस्तकों की रचयित्री, न्याय, व्याकरण, भूगोल, खगोल आदि की प्रकाण्ड विद्वान, परमविदुषी गणिनीप्रमुख आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी, जिन्होंने दिगम्बरत्व के संदर्भ में व्याप्त भ्रांतियों के निराकरण हेतु एवं वस्तुस्थिति के व्यापक प्रचार की दृष्टि से सामयिक रूप में इस पुस्तक का सृजन किया है, के चरणों में भी मैं सादर वंदना करता हूँ।

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

–प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान — टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि — आसोज सुदी १५ (शरदपूर्णिमा) वि. सं. १९९१, (२२ अक्टूबर सन् १९३४)

जाति — अग्रवाल दि. जैन, **गोत्र —** गोयल, **नाम —** कु. मैना

माता-पिता — श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत— ई. सन् १९५२ में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन

क्षुल्लिका दीक्षा — चैत्र कृ. १, ई. सन् १९५३ को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से। नाम — क्षुल्लिका वीरमती

आर्यिका दीक्षा — वैशाख कृ. २, ई. सन् १९५६ को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व — अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं २५० विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् १९९५ में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा एवं तीर्थंकर महावीर विश्वविद्यालय मुरादाबाद द्वारा ८ अप्रैल २०१२ को "डी.लिट्." की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा — हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तेरहद्वीप, तीनलोक आदि रचनाओं के निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा — भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-

बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ की ३१-३१ फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन १०८ फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा — पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से २१ दिसम्बर २००८ को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा — 'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा — जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (१९८२ से १९८५), समवसरण श्रीविहार (१९९८ से २००२), महावीर ज्योति (२००३-२००४) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् १९७२ में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् १९७४ में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं —

१. सन् १९७२ से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।

२. सन् १९७४ से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।

३. सन् १९७४ से १९८५ तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।

४. सन् १९७४ से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है — कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।

५. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग १५००० ग्रंथ संग्रहीत हैं।

६. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।

७. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन किये जाते हैं।

८. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।

९. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।

१०. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।

११. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।

१२. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना से समन्वित हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तक आने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित भगवान ऋषभदेव दीक्षा तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

धरती के देवता

सिद्ध पद के इच्छुक जो महापुरुष पंचेन्द्रिय के विषयों की इच्छा समाप्त करके सम्पूर्ण आरम्भ और परिग्रह का त्याग कर देते हैं तथा ज्ञान ध्यान और तप में सदैव तत्पर रहते हैं, वे ही मुक्तिपथ के साधक होने से सच्चे साधु कहलाते हैं। वे महामना दिगम्बर अवस्था को धारण कर लेते हैं। उनकी चर्या स्वावलम्बी होती है। उनकी जितनी भी क्रियायें रहती है उनसे किसी भी मनुष्य अथवा तिर्यंच को या किसी भी पशु पक्षी आदि जन्तुओं को यहाँ तक कि क्षुद्र कीट आदिकों को भी बाधा नहीं पहुँचती है, बल्कि सभी को सुख, शांति और अभय मिलता है। किसी संप्रदाय विशेष को भी इन दिगम्बर मुनियों द्वारा बाधा नहीं पहुँचती है क्योंकि किसी न किसी रूप में सभी संप्रदायों में त्याग को और यथाजात प्रकृति रूप (नग्नत्व) को महत्व दिया ही है इसीलिए ये दिगम्बर मुनि सर्वत्र और सभी के द्वारा पूज्य होते हैं। विश्व के सभी संप्रदाय के मनुष्य ही क्या व्याघ्र, सर्प आदि क्रूर तिर्यंच पशु भी इनके आश्रय में शांति का

अनुभव करते हैं। कहा भी है—

सारंगी सिंहशावं स्पृशति सुतधिया नंदनी व्याघ्रपोतं।
मार्जारी हंसवालं प्रणयपरवशा केकिकांता भुजंगी।।
वैराण्याजन्मजातान्यपि गलितमदा जंतवोऽन्ये त्यजंति।
श्रित्वा साम्यैकरूढं प्रशमित कलुषं योगिनं क्षीणमोहम्।।

कलुषता को शांत कर देने वाले मोहरहित और एक साम्यभाव में आरूढ़ हुए ऐसे योगी का आश्रय लेकर हिरणी सिंह के बच्चे को पुत्र के भाव से स्पर्श करती है। गाय व्याघ्र के बच्चे को, बिल्ली हंस के शिशु को और मयूरनी सर्प के बालक को बड़े प्रेम से खिलाती है। यहाँ तक कि अन्य जन्तु भी मदरहित होते हुए भी जन्मजात वैर को भी छोड़ देते हैं अर्थात् योगी तीन प्रकार के होते हैं—निष्पन्न, घटमान और प्रारब्धवान्। जो पूर्णतया योग में सफल हो चुके हैं, उनमें उपर्युक्त विशेषताएँ आ जाती हैं, वे निष्पन्न कहलाते हैं। दूसरे योगसिद्धि की मध्यम स्थिति तक पहुँचे हुए घटमान हैं और तीसरे योग के अभ्यास में तत्पर होने से प्रारब्धमान हैं। वर्तमान में यद्यपि तृतीय श्रेणी वाले साधु होते हैं फिर भी उनसे जनता का हित ही होता है अहित नहीं।

इन तीनों प्रकार के साधुओं को स्वर्ग के इंद्र, देव और दानव भी नमस्कार करते हैं। यही कारण है कि इस धरती पर विचरण करते हुए ये 'धरती के देवता' माने जाते हैं।

१. ज्ञानार्णव

चूँकि इस पृथ्वीतल पर विहार करते हुए ये मुनि पंचेन्द्रिय से लेकर वनस्पति, वृक्ष, अग्नि आदि एकेन्द्रिय जीवों तक की रक्षा करते हैं

उन्हें अभयदान—जीवनदान देते हैं, ये परमकारुणिक मुनि विश्ववंद्य, जगद्गुरु भी कहलाते हैं क्योंकि इनका धर्म सभी जीवों का हित करने वाला होने से वह सार्वधर्म या विश्वधर्म कहलाता है। इन मुनियों की चर्या कैसी होती है देखिए—

जीवनचर्या-

ये जिन गुणों का पालन करते हैं उन्हें मूलगुण कहते हैं। जैसे मूल के बिना वृक्ष की एवं नींव के बिना महल की स्थिति नहीं है उसी प्रकार से इन गुणों के बिना कोई भी व्यक्ति वेषमात्र से साधु नहीं हो सकता है। इन मूलगुणों के अट्ठाईस भेद होते हैं—

पाँच महाव्रत, पाँच समिति, पाँच इन्द्रियनिरोध, केशलोंच, षट् आवश्यक, आचेलक्य, अस्नान, क्षितिशयन, अदंतधावन, स्थितिभोजन और एकभक्त।

जो महान—सर्वोत्तम व्रत हैं अथवा जो तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों के द्वारा भी पाले जाते हैं अथवा जो महान पुरुषार्थ अर्थात् अंतिम मोक्ष पुरुषार्थ के लिए कारण हैं वे महाव्रत कहलाते हैं। पूर्णरूप से पाँचों पापों का त्याग कर देना ही महाव्रत है।

सम—सम्यक् प्रकार से इति—प्रवृत्ति समिति कहलाती है अर्थात् चलने, बोलने, भोजन करने आदि प्रवृत्तियों में प्रमाद छोड़कर सावधानी से प्रवृत्ति करना ही समिति है।

स्पर्शन, रसना आदि इंद्रियों को अपने वश में रखना उनके इष्ट-अनिष्ट विषयों में राग द्वेष नहीं करना ही इंद्रियनिरोध व्रत है।

अवश्य करने योग्य क्रियायें आवश्यक कहलाती हैं। इसके अर्थ हैं। प्रत्येक का स्पष्टीकरण देखिए—

१. अहिंसा महाव्रत—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस इन षट्कायिक जीवों की हिंसा का मन, वचन, काय और कृत, कारित, अनुमोदना से पूर्णतया त्याग कर देना अहिंसा महाव्रत है। इस महाव्रत में सम्पूर्ण आरंभ और परिग्रह का त्याग हो जाता है।

२. सत्य महाव्रत—राग, द्वेष, क्रोध आदि से युक्त असत्य वचनों का त्याग करना और अन्य को संतापकारी ऐसे सत्य वचन भी नहीं बोलना सत्य महाव्रत है।

३. अचौर्य महाव्रत—बिना दिये हुए किसी की किसी भी वस्तु को ग्रहण नहीं करना अचौर्य महाव्रत है।

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत—कामसेवन का त्याग कर पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहना, बालिका, युवती और वृद्धा में पुत्री, बहन और माता के समान भाव रखना यह त्रैलोक्य पूज्य महाव्रत है।

५. अपरिग्रह महाव्रत—धन्य-धान्य आदि बहिरंग और मिथ्यात्व आदि अंतरंग परिग्रह का त्याग करना अपरिग्रह महाव्रत है।

६. ईर्या समिति—निर्जंतुक मार्ग से सूर्योदय के प्रकाश में चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना ईर्या महाव्रत है।

७. भाषा समिति—चुगली, हँसी, कर्कश, परनिंदा आदि से रहित हित, मित, प्रिय और संदेह रहित वचन बोलना भाषा समिति है।

८. एषणा समिति—छ्यालीस दोष और बत्तीस अंतराय से रहित, नवकोटि से शुद्ध श्रावक के द्वारा दिया गया ऐसा प्रासुक निर्दोष पवित्र आहार लेना एषणासमिति है।

९. आदाननिक्षेपण समिति—पुस्तक, कमंडलु, पाटा, चटाई

आदि को रखते या उठाते समय कोमल पिच्छिका से परिमार्जन करके रखना, उठाना आदाननिक्षेपण समिति है।

१०. उत्सर्ग समिति—हरी घास, चिंवटी आदि या उनके बिलों से रहित निर्जंतुक एकांत स्थान में मलमूत्रादि विसर्जित करना उत्सर्ग समिति है।

११. स्पर्शनेन्द्रिय निरोध—कोमल स्पर्शादि या कंकरीली भूमि आदि में हर्ष विवाद नहीं करना स्पर्शन इन्द्रियनिरोधव्रत है।

१२. रसनेन्द्रिय निरोध—सरस-मधुर भोजन में, नीरस-शुष्क भोजन में, आनंद या खेद नहीं करना रसना इन्द्रियनिरोध है।

१३. घ्राणेन्द्रिय निरोध—सुगन्धित या दुर्गंधित वस्तु में राग-द्वेष नहीं करना घ्राणेन्द्रिय विजय व्रत है।

१४. चक्षुइंद्रिय निरोध—स्त्री आदि के सुन्दर रूप या विकृत वेष आदि में रागभाव और द्वेषभाव नहीं करना चक्षुइन्द्रिय निरोध है।

१५. कर्णेन्द्रिय निरोध—सुन्दर-सुन्दर गीत, वाद्य तथा असुन्दर निंदा, गाली आदि के वचनों में हर्ष विषाद नहीं करना कर्णेन्द्रिय निरोध व्रत है।

१६. समता—जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख, दुःख आदि में हर्ष नहीं करना—समान भाव रखना समता है। इसे ही सामायिक आवश्यक कहते हैं। त्रिकाल में देववंदना करना भी सामायिक है यह कम से कम ४८ मिनट तक की जाती है।

१७. स्तव—वृषभदेव आदि तीर्थंकरों की स्तुति करना स्तुति आवश्यक है।

१८. वंदना—अर्हंत, सिद्ध एवं उनकी प्रतिमा, जिनवाणी और गुरु को कृतिकर्म (विधिवत् भक्तिपाठ) पूर्वक नमस्कार करना वंदना है।

१९. प्रतिक्रमण—व्रतों में अतिचार आदि लगने पर उनका शोधन करना प्रतिक्रमण है। इसके दैवसिक आदि सात भेद हैं।

२०. प्रत्याख्यान—भविष्य के दोषों का त्याग करना प्रत्याख्यान है। आहार के अनंतर गुरु के पास पुनः आहार करने तक जो चतुराहार का त्याग किया जाता है अथवा किसी भी वस्तु का जो त्याग किया जाता है वह भी प्रत्याख्यान है।

२१. कायोत्सर्ग—काय—शरीर में ममत्व का उपसर्ग—त्याग करना कायोत्सर्ग है। यह सत्ताईस आदि उच्छ्वासों में णमोकार मंत्र के स्मरण रूप होता है।

२२. लोंच—हाथों से सिर, दाढ़ी और मूंछों के केशों का उखाड़ना केशलोंच है।

२३. अचेलकत्व—सूती, रेशमी आदि वस्त्रों का त्याग करना अचेलकत्व है।

२४. अस्नानव्रत—स्नान, उबटन आदि का त्याग करना अस्नान व्रत है।

२५. क्षितिशयन—निर्जंतुक भूमि में या शिला पर या घास, पाटा अथवा चटाई पर शयन करना क्षितिशयनव्रत है।

२६. अदंतधावन—दंत, मंजन आदि नहीं करना अदंतधावन व्रत है।

२७. स्थितिभोजन—पावों में चार अंगुल का अंतराल रखकर खड़े होकर हाथ की अंजुली में आहार ग्रहण करना स्थितिभोजन व्रत है।

२८. एकभक्त—सूर्योदय से तीन घड़ी बाद से सूर्यास्त के तीन घड़ी पहले तक के काल में से दिन में एक बार आहार लेना एकभक्त व्रत है।

जब कोई भी व्यक्ति मुनिपद में दीक्षित होना चाहता है तब गुरुदेव उसे जन समाज के समक्ष विधिवत् दीक्षा देते हुए अट्ठाईस मूलगुणों को पालन करने का नियम देते हैं। जीवदया हेतु मयूर पंख से निर्मित पिच्छी, शुद्धि के लिए काठ (लकड़ी या नारियल) का कमंडलु और सच्चे ज्ञानवर्धन के लिए शास्त्र देते हैं।

मुनि के बाह्य चिन्ह—

आचेलक्य, लोंच, शरीरसंस्कार हीनता और प्रतिलेखन दिगम्बर मुनियों के ये चार चिन्ह माने गये हैं।

आचेलक्य—सूत के वस्त्र, रेशम के वस्त्र, ऊन के वस्त्र, चर्म के वस्त्र, (मृगछाला आदि) तथा वृक्षों की छाल, बल्कल, पत्ते और तृण आदि के वस्त्र ऐसे पाँचों प्रकार के वस्त्रों का त्याग करना आचेलक्य व्रत है[1]। यह व्रत स्वयं एक मूलगुण ही है।

प्रश्न—नग्नत्व में गुण तो अगणित हैं किन्तु दोष अणुमात्र भी नहीं है। आगम में कहा है।

"आचेलक्कं वस्त्रादिपरिग्रहाभावो नग्नत्वमात्रं वा। तच्च संयमशुद्धींद्रिय जयकषायाभावध्यानस्वाध्यायनिर्विघ्नता निर्ग्रन्थता वीतरागद्वेषता शरीरानादर-स्ववशचेतोविशुद्धिप्राकट्यनिर्भयत्वसर्वत्रविस्रब्धत्वप्रक्षालनोद्वेष्टनादि-परिकर्मवर्जनविभूषामूर्च्छत्वलाघवतीर्थकराचरितत्वानिगूढबलवीर्य-

१. मूलाराधना पृ. २१६।

ताद्यपरिमितगुणग्रामपि लंभात्।"

वस्त्रादि परिग्रह का अभाव अथवा नग्नत्व मात्र को आचेलक्य कहते हैं। वस्त्रों के धोने आदि में अनेक जीवों की हिंसा होती है इसलिए उसके त्याग में **संयम की शुद्धि** है। लज्जनीय शरीर के विकार का निरोध करने के लिए दृढ़ता से प्रयत्न किया जाता है। इसलिए इन्द्रिय विजय होता है। चोरादि के द्वारा वंचना आदि न होने से **कषायों का अभाव** होता है। सुईं, डोरा, कपड़े आदि का अन्वेषण, उनके ग्रहण आदि की चिंता न होने से **स्वाध्याय और ध्यान** निर्विघ्न होता है। ममत्वादि रूप परिणाम अभ्यंतर ग्रंथि है और वस्त्रादि परिग्रह बाह्य ग्रंथि—गांठ हैं। इन दोनों प्रकार की ग्रन्थियों का त्याग हो जाने से **निर्ग्रंथता** होती है। रुचिकर और अरुचिकर वस्त्रों का त्याग हो जाने से रागद्वेष के अभाव रूप **वीतरागता और वीतद्वेषता** होती है। हवा, आतप, धूप आदि की बाधा सहन करने से शरीर में अनादर होता है। देशांतर गमन आदि से सहाय की अपेक्षा न होने से स्ववशता स्वाधीनता रहती है। लंगोटी आदि से गुह्य अंग का प्रच्छादन न करने से चित्त की विशुद्धि—निर्विकारता प्रगट होती है। चोरादि के द्वारा ताड़न आदि रूप भय का अभाव होने से निर्भयता रहती है। अपहरण करने योग्य वस्तु अपने पास न रहने से सर्वत्र विश्वस्तता रहती है। वस्त्र के नहीं रहने से उनके धोने, सुखाने, घरी करके रखने, संभालने आदि संबंधी क्रियाओं का अपने आप त्याग हो जाता है। नग्न रहने से शरीर को अलंकार आदि से विभूषित करने का सवाल ही नहीं होता है। शरीर से निर्मूच्छा—ममत्व भी घट जाता है। वस्त्र मात्र भी अपने पास न होने से लघुता—

हलकापन रहता है। तीर्थंकरों के आचरण का अनुसरण भी नग्नता से ही होता है। आत्मा में ही छिपे हुए बल पराक्रम का प्रादुर्भाव अथवा वृद्धि भी इसी से हो सकती है इत्यादि अपरिमित गुण इस नग्नता के द्वारा सिद्ध होते हैं। श्री पद्मनंदि आचार्य ने भी कहा है—

म्लाने क्षालनतः कुतः कृतजलाद्यारंभतः संयमो।
नष्टे व्याकुलचित्ततात्थ महतामप्यन्यतः प्रार्थनम्।।
कौपीनेऽपि हृते परैश्च झगिति क्रोधः समुत्पद्यते।
तन्नित्यं शुचि रागहृच्छमवतां वस्त्रं ककुम्मंडलम्।।

साधु यदि कौपीन मात्र भी वस्त्र धारण करते हैं तो कितना उन्हें कष्ट होता है और उनकी महानता तथा संयम में कितने दोष आते हैं सो देखिये—कौपीन के मलिन होने पर उसे धोना पड़ेगा और फिर उसके लिए जल लाने आदि का आरंभ भी करना ही होगा। ऐसी अवस्था में संयम कहां रहा ? कदाचित् कौपीन गिर जाए, हवा में उड़ जाए या फट जाए तो मन में व्याकुलता आये बिना नहीं रह सकती अथवा उसके लिए दूसरे से प्रार्थना भी करनी पड़ेगी पुनः ऐसी अवस्था में याचना के निमित्त से उसकी महानता में लघुता आये बिना नहीं रह सकती है। यदि कदाचित् उसको कोई चुरा ले जाये अथवा छीन ले तो क्रोध आये बिना नहीं रहेगा अतएव परम शांति की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओं को यही उचित है कि वे दिशाओं को ही वस्त्र के स्थान पर धारण करें। यह दिशारूपी अम्बर—वस्त्र नित्य है—नैसर्गिक होने से कभी भी नष्ट होने वाला या चोरी जाने वाला नहीं है। समस्त मल दोषों से रहित होने से अत्यंत पवित्र है एवं राग द्वेष को दूर करने वाला है। इसके निमित्त से

याचना आदि के द्वारा लघुता प्राप्त नहीं होती और न याचना के व्यर्थ जाने पर मानभंग आदि के द्वारा चित्त में किसी प्रकार की कलुषता ही उत्पन्न होती है अतः संयमियों को यह निर्विकार वस्त्र ही धारण करना चाहिए।

श्री सोमदेव आचार्य ने भी कहा है—

विकारो विदुषां द्वेषो नाविकारानुवर्त्तने।
तन्नग्नत्वे निसर्गोत्थे को नाम द्वेषकल्मषः।।
नैष्किंचन्यमहिंसा च कुतः संयमिनां भवेत्।
ते संगाय यदीहंते बल्कलाजिनवाससाम्।।

विकार में ही विद्वान लोग दोष समझते हैं न कि निर्विकार रूप अवस्था के धारण करने में अतएव ऐसा कौन विवेकी पुरुष होगा जो कि नैसर्गिक—जन्मजात या प्रकृति से प्रदत्त ऐसी नग्नता के विषय में द्वेष के वश होकर कलुषता को धारण करेगा ? अर्थात् इस प्राकृतिक अवस्थारूप नग्नता में किसी को भी द्वेषभाव संभव नहीं है। संयमी साधुओं का आकिंचन्य—अपरिग्रह और अहिंसा व्रत कैसे हो सकता है ? यदि वल्कल, चर्म या किसी भी तरह के वस्त्र के परिग्रह को धारण करने का प्रयत्न करते हैं या उसका भाव भी रखते हैं अर्थात् किंचित् मात्र भी परिग्रह के रखने से अपरिग्रह और अहिंसा की पूर्णता नहीं हो सकती है।

वास्तव में अंतरंग में विकार उत्पन्न होने पर उसे ढकने के लिए ही वस्त्र धारण किये जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो बालक नग्न ही घूमते रहते हैं। न उसको स्वयं विकार या लज्जा का अनुभव होता है और न देखने वाले ही विकार, लज्जा या ग्लानि आदि का अनुभव करते हैं। इसलिए नग्नता यह निर्विकारता की कसौटी है और अपरिग्रह की चरम सीमा है।

यदि किंचित मात्र भी विकार मुनि के मन में उत्पन्न हो जावे तो वह बाहर में प्रगट दीख सकता है किंतु हजारों स्त्रियाँ, युवतियाँ उनके दर्शन को आती हैं, स्तुति, पूजन, वंदन आदि करती हैं किंतु मुनि निर्विकार रहते हैं। उनकी सौम्य मुद्रा से किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं हो सकता है। यदि कदाचित् कोई स्त्री अपनी दुर्भावना से मुनियों को विकारी करने का प्रयत्न करे अर्थात् हाव, भाव, कटाक्ष आदि के द्वारा उन्हें ब्रह्मचर्य से च्युत करने का प्रयत्न करे या कोई देवांगना मुनि की दृढ़ता की परीक्षा हेतु भी नृत्य, विलास आदि करे तो मुनि भी परीषह या उपसर्ग समझकर अपनी जितेन्द्रियता रखते हैं और अपने ब्रह्मचर्य में स्वप्न में भी मलिनता नहीं लाते हैं इसीलिए ये हमेशा बालकवत् निर्विकार और निर्भय रहते हैं।

परिग्रह एक प्रकार की ग्रन्थि है। अंतरंग-बहिरंग परिग्रह रूपी ग्रंथि-गांठ को नहीं रखने से ये '**निर्ग्रन्थ**' कहलाते हैं। जन्म के समय जो रूप रहता है उसी रूप को धारण करने से ये '**यथाजात**' कहलाते हैं। प्रकृति के द्वारा प्रदत्त रूप को धरने से '**प्राकृतिक रूपधारी**' कहलाते हैं। नग्नता यह स्वाभाविक अवस्था है इसे धारण करने से '**स्वाभाविक मुद्राधारी**' या '**नैसर्गिक मुद्राधारी**' कहलाते हैं। तीर्थंकर जिनेन्द्रदेव नग्नमुद्रा धारण करके ही कर्मों का नाश करते हैं अतएव इसे '**जिनमुद्रा**' '**जिनरूप जिनलिंग**' आदि भी कहते हैं। दिशारूपी वस्त्र को धारण करने से ये दिक् अंबर वस्त्र ऐसे दिगम्बर आशांबर, कष्ठांबर आदि नामों से भी जाने जाते हैं। प्राणिमात्र की दया पालने से और इन्द्रियों को वश में रखने से ये '**संयमी**' '**यमी**' '**संयत**' आदि कहलाते हैं। रत्नत्रय की साधना करने से '**साधु**' माने जाते हैं। अवधिज्ञान आदि ज्ञानों की विशेषता से '**मुनि**' कहलाते हैं। अनेक ऋद्धियों को

प्राप्त कर लेने से '**ऋषि**' कहलाते हैं। श्रेणी में आरोहण करने में प्रयत्नशील—तत्पर होने से '**यति**' कहलाते हैं। अगार—घर का त्याग कर देने से '**अनगार**' कहे जाते हैं। योग की साधना करने से '**योगी**' कहलाते हैं। भिक्षावृत्ति से अर्थात् बिना मांगे पड़गाहन विधि से भोजन करने से '**भिक्षुक**' कहे जाते हैं। ये याचना नहीं करते हैं अतः इन्हें याचक नहीं कह सकते हैं। गृहस्थों के घर निमंत्रण से आकर भोजन नहीं करते हैं, अनायास किसी दिन भी आ जाते हैं अतः इनके आने की तिथि निश्चित न होने से ये '**अतिथि**' कहलाते हैं। व्रतों के पालन करने से '**व्रती**' कहे जाते हैं। अनशन आदि तपश्चरण करने से '**तपस्वी**' कहलाते हैं।

पूज्य होने से **भट्टारक** कहलाते हैं। गुणों से या सभी में महान होने से '**गुरु**' कहलाते हैं। स्वयं पाँच आचारों का पालन करने से और शिष्यों को शिक्षा दीक्षा आदि देकर पंचाचार का पालन कराने से '**आचार्य**' चतुर्विध संघ के अधिपति होने से **गणधर, गणी, सूरि** आदि अनेक नामों से कहे जाते है। अध्ययन-अध्यापन में कुशल होने से '**उपाध्याय**' कहलाते हैं इत्यादि अनेकों नाम इन जैन साधुओं के माने गये हैं।

मुख्य रूप से दिगम्बर जैन साधुओं में आचार्य, उपाध्याय और साधु ये तीन पद माने गये हैं। पूर्वोक्त कथित अट्ठाईस मूलगुण सभी में समान हैं किन्तु आचार्य और उपाध्याय में और भी आवश्यक गुण रहते हैं फिर भी ये सभी अचेलक अर्थात नग्नमुद्रा धारी ही होते हैं।

२. लोंच—स्नान नहीं करने से और केशों में तेल डालना आदि संस्कार न करने से उसमें जूं, लीख आदि उत्पन्न हो जाती हैं पुनः खाज आदि होने से उनकी रक्षा संभव नहीं है। यदि नाई से बाल बनवाये तो

पैसे चाहिए, यदि गृहस्थों से माँगे तो याचना दोष होगा अत: जीवहिंसा परिग्रह, अयाचकवृत्ति और दीनता दोष आदि से बचने के लिए साधु अपने हाथ से केशों को उखाड़कर फेंक देते हैं। केशलोंच करते समय गोमय की भस्म (गाय या भैंस के गोबर की राख) को अंगुलियों में लगाते हैं इसका हेतु यही है कि पसीना और केशोत्पाटन से रक्त आ जाने से अंगुली फिसल जाती है इसलिये ये राख का सहारा लेते हैं। केशलोंच करने से शरीर से निर्ममता भी प्रगट होती है तथा परिषह और उपसर्ग रूप कष्टों को सहन करने का अभ्यास होता है।

३. शरीर संस्कार हीनता—स्नान न करने से, उबटन आदि संस्कार न करने से, दन्तधावन (दातौन मंजन आदि) न करने से शरीर रूक्ष एवं मलिन हो जाता है जिससे अपने में भी वैराग्य की वृद्धि होती है। यही कारण है कि ब्रह्मचर्य से पवित्र होने से इन्हें स्नान की आवश्यकता नहीं रहती है।

देह में आत्म बुद्धि—अपनत्व भाव होना ही संसार के दुखों का मूल कारण है इसीलिए मुनि सुगन्धित माला, इत्र आदि से शरीर को संस्कारित न करके धूलि धूसरित शरीर को धारण करते हुए अपने संयम, ब्रह्मचर्य, अहिंसा व्रत, वैराग्य आदि की रक्षा करते हैं। अस्नान और अदंतधावन दो मूलगुणों में यह शामिल हो जाता है। कदाचित् मल, चर्मादि अशुद्ध वस्तु या अशुद्ध जन के स्पर्श हो जाने से मुनि दण्डस्थान करके प्रायश्चित ग्रहण करते हैं।

४. प्रतिलेखन—कार्तिक मास में मयूर स्वयं अपने पंखों को गिरा देता है। ऐसे अति कोमल अर्थात् जिसका नेत्र में भी स्पर्श होने से पीड़ा न हो ऐसे इन मयूर पंखों की पिच्छिका प्रतिलेखन कहलाती है।

यह संयम का उपकरण है अर्थात् मुनि प्रत्येक वस्तु—कमंडलु-पुस्तक-पाटा आदि को पहले नेत्र से देखकर पुन: इस कोमल पिच्छी से परिमार्जित करके ही उठाते या रखते हैं जिससे सूक्ष्म से सूक्ष्म जीवों को भी बाधा नहीं पहुँचती है। इसमें पाँच गुण होते हैं—

यह धूलि को ग्रहण नहीं करती है, पसीने से खराब नहीं होती है, अत्यंत मृदु है, सुकुमार—नमनशील है और लघु—हल्की है। यही कारण कि तीर्थंकरों ने इसे संयम की रक्षा के लिए उपकरण मान कर जैन मुनियों का चिन्ह बतलाया है।

यदि मुनि बिना पिच्छी के सात कदम से ऊपर गमन कर लें तो प्रायश्चित लेना होता है अत: यह जिनमुद्रा का एक चिन्ह है। कहा है—

मुद्रा सर्वत्र मान्या स्यान्निर्मुद्रो नैव मन्यते।

मुद्रा ही सर्वत्र मान्य होती है मुद्रारहित व्यक्ति मान्य नहीं होता है। यदि कोई नग्न हो जावे किन्तु उसके पास पिच्छी न हो वह दिगम्बर जैन साधु नहीं माना जा सकता है। इस प्रकार संक्षेप में जैन साधु के ये चार चिन्ह बतलाये हैं जो कि बाहर में प्रकट रूप में दिखते हैं।

दैनिक चर्या-

मुनि प्रात:, मध्यान्ह और सायं इन तीनों की संधि कालों में सामायिक करते हैं। संधिकाल अर्थात् सूर्योदय के पहले ही दो घड़ी से लेकर सूर्योदय होने से दो घड़ी तक ऐसे चार घड़ी काल छोड़कर पूर्वान्ह में, ऐसे ही मध्यान्ह के अनंतर अपरान्ह में, पूर्व रात्रि में और पश्चिम रात्रि में ऐसे चार काल स्वाध्याय करते हैं। दिवस के अंत होते समय दैवसिक और रात्रि के अंत होते समय रात्रिक ऐसे दो बार प्रतिक्रमण करते हैं। दिवस के अंत में रात्रि योग ('रात्रि में इसी वसतिका में रहूँगा' ऐसा

नियम) ग्रहण करके रात्रि में अंत में रात्रिक प्रतिक्रमण करके उसे समाप्त कर देते हैं।

जब उन्हें भक्तगण नमस्कार करते हैं तब वे आशीर्वाद प्रदान करते हैं। भक्तों के आग्रह पर उन्हें धर्मोपदेश देते हैं। तीर्थयात्रा, गुरुवंदना या धर्मभावना आदि के लिए ईर्यापथ से पैदल विहार करते हैं, आहार के लिए पिच्छी हाथ में लेकर श्रावकों की बस्ती में विचरण करते हैं। उस समय श्रावक भक्ति से "हे स्वामिन्! नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु, अत्र तिष्ठ तिष्ठ" ऐसा बोलकर पड़गाहन करते हैं। तब ये मुनि अपने नियम के अनुसार वहाँ खड़े हो जाते हैं। श्रावकगण उनको तीन प्रदक्षिणा देकर भक्ति से घर के अंदर ले जाकर उच्चासन पर बिठाकर उनके चरण प्रक्षालन करके उनकी पूजा करके थाली में शुद्ध भोजन परोसकर कहते हैं कि हे भगवन्! मन वचन काय शुद्ध है, आहार जल शुद्ध है, भोजन ग्रहण कीजिये। तब ये मुनि पूर्व दिन ग्रहण किये हुए अपने प्रत्याख्यान को समाप्त करके खड़े होकर हाथ की अंजुलि बनाकर उसमें आहार लेते हैं। सरस, नीरस, ठण्डा, गर्म, रूक्ष, स्निग्ध आदि भोजन में रागद्वेष परिणति नहीं करते हुए मात्र संयम, ज्ञान और ध्यान के लिए ही आहार ग्रहण करते हैं। मुनि अपने गुरु की आज्ञा के अनुसार ही प्रत्येक कार्य करते हुए आपस में साधुओं के साथ वंदना, प्रतिवंदना, विनय और अनुकूलता को रखते हुए प्रवृत्ति करते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि इन साधुओं को वनों में ही विचरण करना चाहिए, गाँव या शहर में नहीं, उनको इन साधुओं की व्यवस्था पर ध्यान देना चाहिए। देखिये—

जिनकल्पी-स्थविरकल्पी—

मुनियों में दो भेद हैं—जिनकल्पी और स्थविरकल्पी।

जो मुनि उत्तम संहनन (वज्र के सदृश कठोर हड्डियों के) के धारी हैं, ग्यारह अंग और पूर्वादि शास्त्रों के ज्ञाता हैं, उपसर्ग और परीषह सहने में समर्थ हैं, वर्षाॠतु आदि में छह-छह महीने तक एक जगह ध्यान में खड़े रह सकते हैं। प्राय: पर्वत की चोटी पर कंदराओं में, गुफाओं में निवास करते हैं, आहारार्थ गांव या शहर में आते हैं, पुन: वन में चले जाते हैं, कदाचित् गाँव या शहर में भी रहते हैं किन्तु प्राय: इनका निवास वन में ही रहता है, ये जिनकल्पी कहलाते हैं। इनसे अतिरिक्त हीन संहनन (हीन शक्ति) वाले मुनि अति परिषह और उपसर्गों को सहन करने में असमर्थ होते हुए संघ में रहते हैं, शक्ति के अनुसार प्रतिमायोग और ध्यानादि करते हैं, वर्तमान में पंचमकाल में उत्तम संहनन का अभाव होने से सभी साधु जिनकल्पी नहीं हो सकते हैं। शास्त्र में कहा है कि—

इस दु:षमकाल में संहनन हीन होने से मुनि पुर, नगर और ग्राम में निवास करते हैं। ये साधु स्थविरकल्प में स्थित हैं[१] ये साधु संघ के साथ विहार करते हुए करते हुए धर्म की प्रभावना करते हैं, भव्यों को धर्मोपदेश देते हैं, शिष्यों को बनाकर उनका संरक्षण करते हैं।

वर्तमान में मुनियों का अस्तित्व—

दिगम्बर संप्रदाय में दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व अनादिकाल से

---

१. संहणणस्स गुणेण य दुस्समकालस्स तव पहावेण।
पुरणयरगामवासी थविरे कप्पे ठिया जादा।।१२७।।
(भावसंग्रह पृ. ९२)

चला आ रहा है और अनंतकाल तक चलता रहेगा। इस भरत क्षेत्र में युग की आदि में ऋषभदेव भगवान ने दिगम्बर दीक्षा लेकर मुनिमार्ग प्रकट किया था, यह बात अन्य संप्रदाय वालों ने भी स्वीकार की है। तब से लेकर आज तक परंपरा चली आ रही है, आज भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व है और पंचमकाल के अंत तक रहेगा ऐसा कथन है। अंतिम कल्की राजा जब मुनि के हाथ का पहला ग्रास कर (टैक्स) रूप में मांगेगा तब मुनि आहार छोड़कर अंतराय करके चले जायेंगे। वे चतुर्विध संघ सहित समाधिपूर्वक मरण करके स्वर्ग प्राप्त करेंगे। उसी दिन धर्म का, राजा का और अग्नि का नाश हो जावेगा पुनः छठा काल प्रारंभ हो जायेगा। उस काल में लोग माँसभक्षी 'धर्म कर्महीन, दुराचारी, दुखी तथा घर और परिवार से रहित होंगे। पशुवत् जीवन व्यतीत करके दुर्गति में जावेंगे अतः वर्तमान में मुनियों का अस्तित्व है ही है और भविष्य में भी रहेगा ही रहेगा। श्री कुंदकुन्द स्वामी ने कहा है—

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी।।७६।।
अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुदा णिव्वुदिं जंतिं।।७७।।

इस भरतक्षेत्र में दुःषमकाल में साधु आत्मा के स्वभाव में स्थित होते हैं और उनके धर्मध्यान होता है ऐसा जो नहीं मानते हैं वे अज्ञानी हैं। आज भी रत्नत्रय से शुद्ध साधु आत्मा का ध्यान करके इंद्रपद को अथवा लौकांतिक देव के पद को प्राप्त कर लेते हैं और वहाँ से च्युत होकर निर्वाण प्राप्त कर लेते हैं। श्री सोमदेवसूरि ने भी कहा है कि—

कलौ काले चले चित्ते देहे चान्नादिकीटके।
एतच्चित्रं यदद्यापि जिनरूपधरा नराः।।

इस कलिकाल में चित्त चंचल है और शरीर अन्न का कीड़ा बना हुआ है। बड़े आश्चर्य की बात है कि ऐसी स्थिति में भी जिनरूप के धारण करने वाले मनुष्य विद्यमान हैं। और भी अनेकों उदाहरण हैं।

खास बात यह समझने की है कि इतने हीन संहनन में भी जैन साधुओं की चर्या में अट्ठाईस मूलगुणों में परिवर्तन नहीं हो सकता है औन न इनमें संशोधन करने का किसी को अधिकार ही है। चूँकि ये मूलगुण जिनेन्द्रदेव के द्वारा कहे गये हैं।

पूर्व काल में साधु तपस्या के बल से अनेकों ऋद्धियों को प्राप्त कर लिया करते थे, जिससे उनके शरीर में स्पर्शित हवा से भी लोगों का विष उतर जाता था। कोई-कोई अक्षीण ऋद्धि के धारक होते थे तो जिसके यहाँ आहार करते थे उसके घर में उस दिन चक्रवर्ती का कटक भी जीम जाय तो भी भोजन घटता नहीं था। उनके वचन अमृत के समान गुणकारी हुआ करते थे। इनके सिर पर अंगीठी जला देने पर भी, शेरनी आदि के द्वारा शरीर के खाए जाने पर भी ये अपने ध्यान से चलायमान नहीं होते थे, तभी ये कर्मों का नाश कर मोक्ष प्राप्त कर लिया करते थे।

आज के युग में यद्यपि ऋद्धियाँ नहीं हैं, फिर भी अनेक साधुओं में अनेकों चमत्कार देखे जाते हैं। चरित्रचक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागर महाराज कोन्नूर की गुफाओं में ध्यान करते थे तब उनके शरीर पर सर्प बहुत देर तक क्रीड़ा करता रहा था। जयपुर खानिया में पर्वत पर आचार्यकल्प चंद्रसागर महाराज के पास सिंह आकर बैठकर उनका

भक्ति पाठ श्रवण करते थे, इत्यादि अनेकों उदाहरण हैं। परम पूज्य आचार्य श्री शांतिसागर जी महाराज ने अपने पैंतीस वर्ष के मुनि जीवन में लगभग साढ़े पच्चीस वर्ष उपवास में व्यतीत किये अर्थात् एक, दो आदि से लेकर कभी दस, कभी सोलह आदि उपवास करते रहते थे। कई साधु मासोपवासी भी हो चुके हैं।

आचार्य श्री शांतिसागर जी के चरण प्रक्षालित जल से एक व्यक्ति का श्वेत कुष्ठ नष्ट हो गया था आदि अनेकों साधुओं के अनेकों उदाहरणों को उनके जीवन परिचय से जाना जा सकता है। आज भी साधुओं के आशीर्वाद से या उनके आहारदान आदि से लोग धन, जन से सम्पन्न, सुखी, समृद्धिशाली हुए देखे जाते हैं। ध्यान में आचार्य श्री नेमिसागर जी महाराज प्रसिद्ध भी हो चुके हैं। आचार्य श्री महावीरकीर्ति महाराज खानिया में रात्रि में १२ घंटे तक ध्यान में खड़े रहे थे। कुछ समय पूर्व आरे में कुछ साधु अग्नि के उपसर्ग को सहन करके शांति से समाधिस्थ हो चुके हैं।

पूर्वकाल में भी साधु जिनमंदिरों में, वसतिका या धर्मशालाओं में रहते थे ऐसे उदाहरण हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम रामचंद्र जब अयोध्या का राज्य कर रहे थे उस काल में द्युति[१] नाम के आचार्य ने अपने संघ सहित श्री मुनिसुव्रत भगवान के मंदिर में चातुर्मास किया था। ऐसे अनेकों उदाहरण शास्त्र में देखे जाते हैं इसलिये आज भी साधु गाँव या शहर के मंदिरों में या धर्मशालाओं में रहते हैं। उनसे किसी को कोई बाधा नहीं आती है प्रत्युत लाभ ही रहता है।

महाभारत में कहा है कि युद्ध के लिए प्रस्थान के समय श्रीकृष्ण

---

१. पद्मपुराण पर्व।

अर्जुन से कहते हैं—'आरोरुह रथं पार्थ! गाँडीवं चापि धारय। निर्जिताँ मेदिनीं मन्ये निर्ग्रन्थो गुरुरग्रत:।' हे अर्जुन! तुम रथ पर चढ़ जाओ और गांडीव धनुष को भी धारण करो। मैं इस पृथ्वी को जीती हुई ही समझ रहा हूँ चूँकि निर्ग्रन्थ मुनि सामने दिख रहे हैं।

ज्योतिष शास्त्र में भी कहा है—

पद्मिनी राजहंसाश्च निर्ग्रन्थाश्च तपोधना:।
यद्देशमभिगच्छंति तद्देशे शुभमादिशेत्।।

पद्मिनी स्त्रियाँ, राजहंस और निर्ग्रंथ तपोधन जिस देश में पहुँचते हैं उस देश में शुभ—मंगल हो जाता है।

यद्यपि श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय में साधु वस्त्रादि ग्रहण करते हैं फिर भी उनके पुरातन ग्रंथ दिगम्बर वेष को प्राचीन और श्रेष्ठ मानते हैं।

[१]कल्पसूत्र में ऐसा कथन है कि "भगवान वृषभदेव" ने दिगम्बर धर्म का पालन किया था। आचारांग में कहा है कि दिगम्बर वेष इतर वेषों से श्रेष्ठ है। ठाणांग में कहा है कि "भगवान[२] महावीर कहते हैं कि श्रमण निर्ग्रंथ को नग्नभाव, मुंडभाव, अस्नान, अदंत धावन, छत्र नहीं करना, पगरखी नहीं पहनना, भूमिशय्या, फलक शय्या, काष्ठ शय्या,

---

१. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. ६३।

२. "से जहानमए अज्जोमए समणाण णिग्गंथाण नग्गाभावे मुंडभावे अण्हाणए अदंतवणे अच्छत्तए अणुवाहणए भूमिसेज्जा फलगसेज्जा कटुसेज्जा केसलोए बंभचेरवासे लद्धावलद्धवित्तीओ जाव पण्णत्ताओ एवामेव महापडमेवि अरहा समणाणं णिग्गंथाणं नग्गाभावे जाव लद्धावद्धवित्तीओ जाव।" ठाणा. पृ. ८१३।

केशलोंच, ब्रह्मचर्य पालन, अन्य के गृह में भिक्षार्थ जाना, आहार की वृत्ति जैसे मैंने कही वैसे ही महापद्म अरिहंत भी कहेंगे।"

श्वेतांबराचार्य आत्माराम जी ने भी अपने तत्त्वनिर्णयप्रासाद में निर्ग्रंथ शब्द की व्याख्या दिगम्बर भाव पोषक रूप में दी है। यथा—

"कंथाकौपीनोत्तरा संगादीनां त्यागिनो यथाजातारूपधरा निर्ग्रंथा निष्परिग्रहा:।" कंथा, कौपीन, उत्तरीय परिग्रह आदि के त्यागी यथाजात रूपधारी निष्परिग्रही ही निर्ग्रंथ होते हैं, और भी बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

अन्य सम्प्रदाय में नग्नता-

वैदिक संप्रदाय के ग्रंथों में भगवान वृषभदेव को आठवां अवतार माना है और वे नग्न दिगम्बर साधु हुए, ऐसा कहा है। यथा—

[१]कुलादिबीजं सर्वेषामाद्यो विमलवाहनः।
चक्षुष्मांश्च यशस्वी चाभिचंद्रोऽथ प्रसेनजित्।।
मरूदेवश्च नाभिश्च भरते कुलसत्तमः।
अष्टमो मरुदेव्यां तु नाभेजीत उरुक्रमः।।
दर्शयन् वर्त्मवीराणां सुरासुरनमस्कृतः।
नीतित्रयाणां कर्ता यो युगादौ प्रथमो जिनः।।

सबसे प्रथम कुल के आदि बीज विमलवान हुए। उनके पश्चात् चक्षुष्मान्, यशस्वी, अभिचंद्र और प्रसेनजित् कुलकर हुए। भरतक्षेत्र में छठे कुलकर मरुदेव और सातवें नाभिराज हुए। नाभिराज की पत्नी मरुदेवी से आठवें कुलकर ऋषभदेव हुए, ये वीरों का मार्ग दिखलाते हुए सुरासुरों से नमस्कृत, तीन प्रकार की नीतियों के कर्ता थे और युग

१. मनुस्मृति में। २. भागवत पु. ५-३-२०।

की आदि में प्रथम जिन हुए हैं। जैनों के यहाँ ये नाभिराज चौदहवें कुलकर थे और ऋषभदेव प्रथम जिन—तीर्थंकर थे। और देखिए—

[२]"बर्हिणि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त भगवान् परमर्षिभि: प्रसादितो नाभे: प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानां ऋषीणां ऊर्ध्वमंथिन्यां शुक्लया तन्वावतार।"

अर्थात् यज्ञ में परम ऋषियों द्वारा प्रसन्न किये जाने पर हे विष्णुदत्त परीक्षित! स्वयं श्री विष्णु भगवान् महाराज नाभि का प्रिय करने के लिए इनके रनिवास में महारानी मरुदेवी के गर्भ में आये। उन्होंने इस पवित्र शरीर का अवतार वातरशना श्रमण ऋषियों के धर्म को प्रकट करने की इच्छा से ग्रहण किया। यहाँ 'वातरशना' शब्द वायु ही जिनके वस्त्र हैं ऐसे दिगम्बर मुनियों के लिए प्रयुक्त है।

ईश्वर के बीस अवतारों में भी नाभिराज और मरुदेवी से ऋषभदेव का आठवां[१] अवतार माना है। और भी देखिये—

[२]"एवमनुशास्यात्मजान् स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुवासनार्थं नीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षण **परमहंस्यधर्म**मुपशिक्ष्यमाण: स्वतनयशतज्येष्ठ परमभागवतं भगवज्जनपरायण भरतं धरणीपालनायाभिषिंच्य स्वयं भवन एवोवरितं **शरीरमात्रपरिग्रह** उन्मत्त इव **गगनपरिधान:** प्रकीर्णककेश आत्मन्यारोपिताहवनीयों ब्रह्मावर्तात् प्रबव्राज"।।२७।।

अर्थात्—"इस प्रकार महायशस्वी और सबसे सुहृद ऋषभ भगवान् ने यद्यपि उनके पुत्र सभी प्रकार कुशल थे, फिर भी मनुष्यों को उपदेश देने के लिए प्रशांत और कर्मबंधन से रहित महामुनियों को

१. भागवत कथा पृ. २९। २. भागवत स्कन्ध ५, अ. ५।

भक्तिज्ञान और वैराग्य लक्षण परमहंस आश्रम की शिक्षा देने हेतु अपने सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ परम भागवत, भगवज्जनपरायण भरत को पृथ्वीपालन हेतु राज्याभिषेक करके तत्काल ही संसार को छोड़ दिया और आत्मा में होमाग्नि को आरोप कर केश खोल, उन्मत्त की भांति नग्न हो केवल शरीर मात्र को संग ले ब्रह्मावर्त से सन्यास धारण कर चल पड़े।"

अन्य ग्रंथों में भी नग्नत्व को महत्व दिया है।

परमहंसोपनिषद् के निम्न वाक्य देखिये—

[1]"तदेद्विज्ञाय ब्राह्मणः पात्र कमण्डलुं कटिसूत्रकौपीनं च तत्सर्वमप्सु विसृज्याथ जातरूपधरचरेदात्मानमन्विच्छद। यथाजातरूपधरो निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहस्तत्व ब्रह्ममार्गेसम्यक् सम्पन्नशुद्ध मानसः प्राणसंधारणार्थं यथोक्तकाले पंचगृहेषु करपात्राणायाचिताहारमाहरन् लाभालाभे समो भूत्वा निर्ममः शुक्लध्यानपरायणोऽध्यात्मनिष्ठः शुभाशुभकर्मनिर्मूलनपरः परमहंसः पूर्णानंदैकबोधः तद् ब्रह्मोऽहमस्मीति ब्रह्मप्रणवमनुस्मरन् भ्रमरकीटकन्यायेन शरीरत्रय मुत्सृत्य देहत्यांग करोति स कृतकृत्यो भवतीत्युपनिषद्।"

ऐसा जानकर ब्राह्मण (ब्रह्मज्ञानी) पात्र, कमंडलु, कटिसूत्र और लंगोटी इन सब चीजों को जल में विसर्जित कर **जातरूप** अर्थात् नग्नरूप होकर विचरण करे और आत्मा का अन्वेषण करे। जो **यथाजातरूपधारी** (दिगम्बर) निर्द्वंद्व, निष्परिग्रही तत्त्व ब्रह्ममार्ग में भले प्रकार सम्पन्न शुद्ध हृदय, प्राण धारण के निमित्त यथोक्त समय पर पाँच घरों में विहार कर करपात्र में अयाचित भोजन लेने वाला लाभ-अलाभ में समचित्त होकर निर्मम रहने वाला '**शुक्लध्यानपरायण**' अध्यात्मनिष्ठ शुभाशुभ कर्मों के निर्मूलन करने में तत्पर परमहंसयोगी

१. दिगम्बर और दिगम्बर जैन मुनि पृ. १८, २८, २९।

पूर्णानंद का अद्वितीय अनुभव करने वाला 'वह ब्रह्म मैं हूँ।' ऐसे ब्रह्म प्रणव का स्मरण करता हुआ भ्रमर कीटक न्याय से तीनों शरीरों को छोड़कर देह त्याग करता है वह कृतकृत्य हो जाता है, ऐसा उपनिषदों में कहा है।

तुरीयातीतोपनिषद् में भी—**संन्यस्य**[1] दिगम्बरो भूत्वा इत्यादि वाक्य हैं। ऐसे ही परमहंस[2] परिव्राजकोपनिषद् और याज्ञवल्क्योपनिषद् में भी दिगम्बर होने का आदेश दिया है।

महर्षि बाल्मीकि ने लिखा है कि श्रमण मुनि महाराज जनक के यहाँ आहार को जाया करते थे।

यथा 'श्रमणश्चै[3] भुंजते' इसकी टीका में 'श्रमणा दिगम्बरा श्रमणावातरशना इति' ऐसा वाक्य है।

राजा दशरथ भी श्रमणों को आहार देते थे—'तापसा'[4] भुंजते तथा।' योगवाशिष्ट[5] में श्री रामचंद 'जिन' होने की इच्छा प्रगट करते हैं। यथा—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः।
शांतिमास्थातु मिच्छामिस्वात्मन्येव जिनो यथा।।

स्कंधपुराण[6] में शिव को दिगम्बर लिखा है। यथा—

वामनोऽपि ततश्चक्रे तत्र तीर्थावगाहनम्।
यादृग्रूपः शिवो दृष्टः सूर्यबिंबे दिगम्बरः।।

१-२. दिगम्बर और दिगम्बर जैन मुनि पृ. १८, २८, २९।
३. बाल्मीकि रामायण १४।१२।
४. बाल्मीकि रामायण बालकांड सर्ग १४ श्लोक २२।
५. योगवाशिष्ट अ. १५, श्लोक ८।
६. स्कंधपुराण प्रभास खंड, पृ. २२१।

श्री भर्तृहरि वैराग्यशतक में लिखते हैं—

एकाकी निस्पृहः शांतः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
कदाशंभो! भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः।।

हे शम्भो! मैं अकेला, इच्छा रहित, शांत, पाणिपात्र भोजी और दिगम्बर होकर कर्मों का नाश करने में समर्थ कब हो सकूँगा ?

वे और भी कहते हैं—

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शांतिश्चिरं गेहिनी।
सत्यं सूनुरयं दया च भगिनी भ्राता मनः संयमः।।
शय्या भूमितलं दिशैकवसनं ज्ञानामृतं भोजनं।
एते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे! कस्माद् भयं योगिनः।।

जिनके धैर्य ही पिता हैं, क्षमा माता है, शांति स्त्री है, सत्य पुत्र है, दया बहन है, मन का संयम ही भाई है, पृथ्वीतल ही शय्या है और दिशाएं ही वस्त्र हैं, ज्ञानामृत ही भोजन है। हे मित्र! जिन योगियों के ये कुटुम्बीजन विद्यमान हैं उन्हें भय कैसे हो सकता है ? अर्थात् वे हमेशा निर्भय हैं।

इस प्रकार से अनेकों पुराणों में, वेदों में, स्मृतिग्रंथों में दिगम्बर का पोषण आया है। वेदों में तो अनेकों मंत्र तीर्थंकर अर्हंत के वाचक पाए जाते हैं। यथा—"अर्हंत ये सुदानवो नरो—" इत्यादि।

"[1]**नमं सुवीरं दिग्वाससं ब्रह्मगर्भं सनातनम्।**
ॐ त्रैलोक्य प्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान्।।

---

१. वृद्धारण्यके। २. " निगण्ठो, आवुसो नाथ पुत्तो सव्वज्ञु सव्वदस्सावी अपरिसेसं ज्ञाणं दसव परिजानाति।" (मज्झिम निकाय) निगष्ठो नातपुत्रो सघी चेव गणीच गणाचार्यो च ज्ञातो यसस्सी तित्थकरो साधु समस्तो बहु जनस्स रन्तस्सू चिर पव्वजितो अद्धगतो वयो अनुप्पन्ता। (दीर्घ निकाय)।

ऋषभाद्या बंधमानान्तान् सिद्धान् शरण प्रपद्ये।

बौद्ध ग्रंथों में भी भगवान महावीर को दिगम्बर मानकर उनकी प्रशंसा की है।

"मज्झिम[2] निकाय में उन्हें सर्वज्ञ और सर्वदर्शी कहा है। दीर्घनिकाय में भी कहा है कि "निर्ग्रंथ ज्ञातृपुत्र (महावीर) संघ के नेता हैं, गुणाचार्य हैं, दर्शन विशेष के प्रणेता हैं, विशेष विख्यात हैं, तीर्थंकर हैं, बहुत मनुष्यों द्वारा पूज्य हैं, अनुभवशील हैं, बहुत काल से साधु अवस्था का पालन करते हैं और अधिक वय प्राप्त हैं।"

"नेपाल[1] में गूढ़ और तांत्रिक नाम की एक बौद्ध धर्म की शाखा है। मि. हागसन ने लिखा है हि इस शाखा में नग्न यति रहा करते हैं।"

बौद्धों के और भी ग्रंथों में—विनय पिटक' 'जातक' आदि में भगवान महावीर को 'अचेलक नाथ पुत्र' निर्ग्रंथ पुत्र' नामों से उल्लेख किया है।

'बौद्ध[2] ग्रंथों में कई जगह लिखा है कि 'दिगम्बर मुनि उस समय बाजार, घर, शहर आदि में विचरण करते रहते थे।'

इस्लाम धर्म में भी नग्नत्व को आदर दिया है यथा—'तुर्किस्तान[3] में 'अब्दुल' नामक दरवेश मादरजात नंगे रहकर अपनी साधना में लीन बताये गये हैं।"

ईसाइयों में भी दिगम्बरत्व का महत्त्व है बाइबिल में स्पष्ट कहा है—

"उसी समय[4] प्रभु ने अमोज के पुत्र ईसायिया से कहा, जा और

---

१. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. ८९।
२. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. १००।
३. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. ३९।
४. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. ४५। (ईसाम्या २०/२)

अपने वस्त्र उतार डाल और अपने पैरों से जूते निकाल डाल और उसने यही किया, नंगा और नंगे पैरों हो वह विचरने लगा।''

इस उदाहरण से यह स्पष्ट है कि बाइबिल भी मुमुक्षु को दि. हो जाने का उपदेश देती है और कितने ही ईसाई साधु दिगम्बर वेष में रह भी चुके हैं।

भद्रबाहु चरित्र और वृहत्कथाकोश आदि में मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त को दिगम्बर मुनि हुये माना है।

'यूनानी[1] राजदूत मेगस्थनीज भी चंद्रगुप्त को श्रमणभक्त प्रगट करता है।' अशोक[2] ने अपने एक स्तम्भलेख में स्पष्टतः निर्ग्रंथ साधुओं की रक्षा का आदेश निकाला था तथा 'सम्राट'[3] संप्रति पूर्णतः जैनधर्म परायण थे। उन्होंने जैन मुनियों के विहार और धर्म प्रचार की व्यवस्था न केवल भारत में ही की बल्कि विदेशों में भी उनका विहार कराकर धर्म प्रचार किया था।''

जब सिकन्दर[4] ससैन्य यूनान को लौटा तब 'मुनि कल्याण' उनके साथ हो लिये थे, ये दिगम्बर मुनि थे।

सुंग और आंध्र राज्यों में दिगम्बर मुनि विचरण करते थे। ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में मुनियों का विहार हो रहा था। एक दिगम्बर जैनाचार्य[5] यूनान गये थे।

---

१. ''दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि'' पृ. १०६।

२. ''दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि'' पृ. १०८।

३. 'कृणाल सूनूस्त्रि खण्ड भरताणिपः परमहितो अनाऽर्य देशे एवपि प्रवर्तितश्रमणविहारः संप्रति महाराजा सौऽभवत् । (दि.और मुनि पृ. १०९

४.''दिगम्बरत्व-पृ. १११। ५. दिग. पृ. ११७।

हर्षवर्धन[1] तथा हुए नसांग के समय में भी दिगम्बर मुनि निर्बाध विहार करते थे।

राजा भोज[2] ने अपनी राजधानी उज्जयिनी में स्थापित की थी। उस समय भी उज्जयिनी अपने 'दि०जैन संघ' के लिए प्रसिद्ध थी। उस समय तक उस संघ में ईस्वी सन् ७०८ से लेकर १०५८ तक अनंत कीर्ति आचार्य से लेकर महीचन्द्र आचार्य तक १९ आचार्य हुए थे।

ईस्वी सन्[3] ९-१० शताब्दी में जब अरब का सुलेमान नामक यात्री भारत में आया तो उसने भी यहाँ नग्न साधुओं को एक बड़ी संख्या में देखा था। सारांशतः मध्यकालीन हिन्दूकाल में दिगम्बर मुनियों का भारत में बाहुल्य था।

पुरातत्व में भी दिगम्बर मुनियों का अस्तित्व अंकित है।

मथुरा का पुरातत्व ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी तक का है। वहाँ पर प्रायः सभी मूर्तियाँ नग्न दिगम्बर हैं। एक स्तूप के चित्र में जैन मुनि नग्न, पिच्छी व कमण्डलु लिए हुए दिखाये गये हैं उन पर के लेख दिगम्बर मुनियों के द्योतक हैं।

राजगृह (बिहार) आदि में पुरातत्वों में भी दिगम्बर मुनियों की मूर्तियां और लेख उपलब्ध हैं। महाराष्ट्र, दक्षिण, केरल, गुजरात आदि में दिगम्बरों का अस्तित्व अतिप्राचीन सिद्ध है।

अजंता और एलोरा की गुफाओं में दिगम्बर मूर्तियाँ अगणित हैं। श्रवणबेलगोल के प्रायः सभी शिलालेख दिगम्बर मुनियों की ही कीर्ति गा रहे हैं।

---

१. दिग .पृ. १३३। २. ''दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि'' पृ. १४३।

३. ''दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि'' पृ. १५३।

"लंका[१] में ईस्वी पूर्व चौथी शताब्दी में हिंसल नरेश पाण्डुंकाभय ने वहाँ के राजनगर अनिरुद्धपुर में एक जैन मंदिर और जैन मठ बनवाया था। इक्कीस राजाओं के राज्य तक वह मंदिर और मठ मौजूद रहा किन्तु ईस्वी पूर्व ३८ में राजा वट्टमामिनी ने उन्हें नष्ट कराकर उनके स्थान पर बौद्ध विहार बनवाया था।"

मुसलमानी बादशाहत में भी दिगम्बर मुनियों का विहार निर्बाध था। बादशाह[२] अलाउद्दीन के दरबार में दिगम्बर जैनाचार्य ने षट्दर्शन वादियों से शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त की थी।

बादशाह[३] औरंगजेब ने भी दिगम्बर मुनियों का सम्मान किया था।

ब्रिटिश[४] शासन काल में दिगम्बरों का विहार बेरोक-टोक था। महारानी विक्टोरिया ने अपनी १नवम्बर सन् १८५८ की घोषणा में यह बात स्पष्ट कह दी थी कि ब्रिटिश की छत्रछाया में प्रत्येक जाति और धर्म के अनुयायी को अपनी परम्परागत धार्मिक और सामाजिक मान्यताओं को पालन करने में पूर्ण स्वाधीनता होगी और कोई भी सरकारी कर्मचारी किसी के धर्म में हस्तक्षेप नहीं करेगा।'

आज भी दिगम्बर मुनियों का विहार भारत के कोने-कौने में निराबाध रूप से हो रहा है। सन् १९३४ में दिगम्बर आचार्य श्री शांतिसागर महाराज ने दिल्ली में चातुर्मास किया था। आज भी दिल्ली, कलकत्ता, मुम्बई, चेन्नई, इंदौर, जयपुर आदि शहरों में दिगम्बर साधुओं के चातुर्मास होते रहते हैं।

---

१. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. २४५। २. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. २५१। ३. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. २६०। ४. "दिगम्बरत्व और दिगम्बर जैन मुनि" पृ. २६५।

निष्कर्ष यही निकलता है कि संप्रदायों में दिगम्बरत्व—नग्नत्व को निराकुलता का और आत्मशांति का साधन स्वीकार किया है और इस वेष को महत्व दिया है।

इसीलिए तो गुणभद्र स्वामी लिखते हैं कि—

अर्थिनो धनमप्राप्य धनिनोप्यवितृप्तितः।
कष्टं सर्वेऽपि सीदंति परमेको मुनिःसुखी।।

धन के इच्छुक (निर्धन) धन को नहीं प्राप्त करके दुखी होते हैं और धनी भी तृप्ति के न होने से दुखी हैं। हाँ! बड़े खेद की बात है कि संसार में सभी दुखी हो रहे हैं किन्तु उनमें एक मुनि ही सुखी हैं।

क्योंकि इनकी चर्याएँ स्वावलम्बी होने से वर्तमान में भी इनको सुख देने वाली हैं और परलोक में तो वे सुखी होते ही हैं तथा परम्परा से सर्व कर्मबंधन से छूटकर पूर्ण स्वातंत्र्य सुख प्राप्त करके सदा-सदा के लिए पूर्ण सुखी हो जाते हैं।

अभी ये धरती पर पूज्य होने से '**धरती के देवता**' हैं, कालांतर में तीनों जगत् के गुरु भगवान बनकर त्रिभुवन के देव परम पिता परमात्मा हो जाते हैं।

और उनका आश्रय लेने वाले भक्तगण भी कभी न कभी उन्हीं के सदृश पूर्ण सुखी हो जाते हैं।

।। इति शं भूयात् ।।

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज —वन्दन शत शत बार है..........

मेरा नम्र प्रणाम है,
महावीर के लघुनंदन को मेरा नम्र प्रणाम है।
कलियुग में भी जिनका दर्शन करता जग कल्याण है।
महावीर के लघुनंदन को मेरा नम्र प्रणाम है।।टेक.।।

जिनके तप की कथा सदा, ग्रन्थों में पढ़ी पुरानी है।
कवियों ने जिन मुनियों की, कविता में कही कहानी है।।
भारत की धरती ही उन, सन्तों की मानो खान है।
महावीर के लघुनंदन को मेरा नम्र प्रणाम है।।।१।।

सदी बीसवीं में गुरु शांतीसागर प्रथमाचार्य हुए।
घोर तपस्या करके युग को, कई संत मुनिराज दिये।।
तभी आज मुनियों के दर्शन ही मानो शिवधाम हैं।
महावीर के लघुनंदन को मेरा नम्र प्रणाम है।।२।।

काय में उत्तम बल नहिं है, फिर भी चर्या प्राचीन है।
वही मूलगुण वही परीषह, शास्त्रों के आधीन हैं।।
ब्रह्मचर्य का पालन जिनके, जीवन का आयाम है।
महावीर के लघुनंदन को मेरा नम्र प्रणाम है।।३।।

भजन

-प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

तर्ज–सुहानी जैनवाणी......

दिगम्बर प्राकृतिक मुद्रा, विरागी की निशानी है।
कमण्डलु पिच्छिधारी नग्न मुनिवर की कहानी है।। टेक.।।

दिशाएँ ही बनीं अम्बर न तन पर वस्त्र ये डालें।
महाव्रत पाँच समिति और गुप्ती तीन ये पालें।।
त्रयोदश विधि चरित पालन करें जिनवर की वाणी है।। कमण्डलु......।।१।।

बिना बोले ही इनकी शान्त छवि ऐसा बताती है।
मुक्ति कन्यावरण में यह ही मुद्रा काम आती है।।
मोक्षपथ के पथिकजन को यही वाणी सुनानी है। कमण्डलु......।।२।।

यदि मुनिव्रत न पल सकता तो श्रावक धर्म मत भूलो।
देव–गुरु–शास्त्र की श्रद्धा परम कर्तव्य मत भूलो।।
बने मति 'चन्दना' जैसी यही ऋषियों की वाणी है।। कमण्डलु......।।३।।